एक दिन

लेखक

श्रीभगवतीचरण वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०

[पतन आदि के रचयिता]

—:o:—

भूमिका-लेखक

श्रीवेंकटेशनारायण तिवारी

(भूतपूर्व पार्लिआमेंटरी सेक्रेटरी युक्त प्रांत)

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६, लाटूश रोड

लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द १)] सं० १९९७ वि० [सादी ।।)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

—:o:—

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

समर्पण

हिंदी के उन महान् कलाकारों तथा उनके अनगिनती शिष्यों को, जिनसे मुझे इस महान् ग्रंथ के लिखने की प्रेरणा मिली है, यह कृति श्रद्धा, भक्ति और आदर के साथ समर्पित है।

भगवतीचरण वर्मा

मेरी बात

(१)

हर साँस में पिनहा है एक नशाए - मदहोशी ;
हर बात यहाँ मेरी अफ़सानए - हस्ती है !

एक जल्वा, एक करिश्मा, एक नूर ! यही ज़िंदगी है, यही इंसान है। मैं इंसान हूँ, मैं सोचता हूँ ; मैं इंसान हूँ, मैं कहता हूँ ; और मेरी इंसानियत का पेंचीलापन किसी हालत में उसके पेंचीले-पन से कम नहीं, जो ख़ालिक़ होने का दावा भरता है। दुनिया से नावाक़िफ़—मैं वक़्फ़ियत हूँ, दुनिया से दूर मैं दुनिया हूँ। तुम समझो या न समझो—मैं पैग़ंबर हूँ ; तुम मानो या न मानो, मैं हक़ीक़त हूँ।

अंधकार ज्ञान है, ज्ञान आकांक्षा है, आकांक्षा मैं हूँ, मैं अंधकार हूँ। इस चक्र से पार्थक्य निर्वाण है, इस चक्र का अंतरंग कौतूहल है। निर्वाण में कौतूहल, कौतूहल में निर्वाण—विषमता की परा काष्ठा को पार करती हुई अनंतमय शून्य में स्थित सर्वव्यापी ऐक्य की महत्ता है। शून्य और अनंत—सीमा को भस्मीभूत करनेवाले एक तत्त्व के दो रूपक हैं।

'मेरी बात' में और 'एक दिन' में जमने और उखड़ने का एकरस प्रतिपादन है।

(२)

मैं भूल जाना चाहता हूँ—कि कला की कसौटी क्या है—एक

दिन, केवल एक दिन के लिये मैं कुछ का कुछ बन जाना चाहता हूँ। आज मेरे सामने जो कुछ है, सब निरर्थक है, सब व्यंग्य-मात्र है। ज़िंदगी के न-जाने कितने पहलुओं को देखने के बाद आज मुझे उससे अरुचि-सी हो गई है; सब तरफ़ एक अजब तरह का खोखला-पन नज़र आ रहा है। कुछ भी तो स्थायी नहीं। कुछ भी तो सारगर्भित नहीं। ऊँचे-ऊँचे सिद्धांत, लंबी-चौड़ी बातें, आदर्श और ज्ञान, ये सब-के-सब असत् के कूड़ेख़ाने को सजानेवाली चीज़ें हैं—सत्य है एक अनजाना अदृश्य। आज के लिये मैं ज्ञानियों की नज़र में अंधा बन गया हूँ—दुनियादारों के लिये पागल बन गया हूँ। पर अपने इस अंधेपन पर भी मुझे गर्व है—अपने इस पागलपन पर भी मुझे नाज़ है। मैं अपने को किसी से कम क्यों समझूँ—मुझे किसी पर विश्वास नहीं।

क्या कहा? "क्या मुझे अपने ऊपर विश्वास है?" कह नहीं सकता। नियमानुसार, कारण और कार्य को ध्यान में रखते हुए, मुझे अपने ऊपर तो विश्वास होना चाहिए—पर न-जाने क्यों आज मुझे अपने ऊपर भी विश्वास करने की तबीअत नहीं होती। सब तरफ़ देखता हूँ—और असलियत पर एक परदा नज़र आता है। तो क्या यह परदा ही असलियत है?—झूठ ही एक सत्य है? शून्य ही एक अस्तित्व है? इस प्रश्न को करनेवाला मैं अकेला ही नहीं हूँ—अनादिकाल से यह प्रश्न होता आया है—शायद अनंत काल तक यही प्रश्न होता भी रहेगा। पर इसका उत्तर तर्क द्वारा नहीं मिल सकता। अपनी तबीअत से—अपने रंग में आकर हम भले ही कुछ कह दें।

वेदांत ने कहा—तर्क किया—और नतीजा? वेदांत अविश्वास

है—रहस्य को न समझने के कारण अनंतमय शून्य मानकर तर्क से पिंड छुड़ानेवाली पराजय है। उससे अधिक सुलझा हुआ तो सांख्य है, जिसने प्रकृति और पुरुष को मानकर एक रूपक तो दिया। पर वह भी अधूरा है—पूरा कौन है? विश्वास तर्क की पराजय है, अविश्वास तर्क का खोखलापन है।

(३)

क्या कोई चीज़ तर्क के ऊपर भी है? बुद्धि को सर्वोपरि माननेवाला मैं आज तर्क अथवा बुद्धि से भी ऊपर किसी चीज़ को मानने को कटिबद्ध हो गया हूँ। कह चुका हूँ न कि मैं अपने आपे में नहीं हूँ, और, बहुत संभव है कि आप कहें कि मैं अनाप-शनाप बक रहा हूँ। पर मैं पूछूँगा कि क्या आप जो कुछ कहते या करते हैं, उसमें कुछ सार है? हरएक आदमी अनाप-शनाप कहता है, अनाप-शनाप करता है। मैंने वीरों को मस्तक ऊँचा किए हुए अपनी वीरता की डींग मारते देखा, मैंने भक्तों को सूर और तुलसी के पदों पर आँसू बहाते हुए और प्रत्येक क्षण राम-नाम जपते देखा, मैंने प्रेमियों को प्रेमिकाओं के चरण चूमते और आहें भरते देखा। और, इन सबके बाद मैंने उन्हें चिता पर जलते भी देखा है। और, उस समय उनके अस्थि-पंजर कह रहे थे कि वह सारी वीरता—वह सारी भक्ति, वह सारा प्रेम अनाप-शनाप था। अगर आप इस गुरुतर सत्य की अवहेलना कर सकते हैं—वास्तविकता के सामने ज़बर्दस्ती आँखें बंद करके तथ्य और सार की दुहाई दे सकते हैं, तो आपको पूरा अधिकार है कि आप मुझे पागल क़रार दें—मेरी बातों को अनाप-शनाप कहें।

तो जनाब, मैं आज बुद्धि के ऊपर उठ गया हूँ। एक रहस्य के

लोक में विचरण कर रहा हूँ—छायाओं से घिरा हुआ मैं स्वयं छाया बन गया हूँ। कबीर की मेरे सामने कोई हस्ती नहीं—रवि ठाकुर तो अपने को कबीर का शिष्य ही समझते हैं। दुनिया के जितने बड़े-बड़े कवि हैं, साहित्यिक हैं—जो अपनी कृतियों से बुद्धि और ज्ञान को चुनौती देते हैं—उनको मैं चुनौती देने आया हूँ। और, उन लोगों की नज़रों में, जो विचित्रता को, अस्पष्टता को और क्लिष्टता को ही कला की एकमात्र कसौटी समझते हैं, मैं सर्वश्रेष्ठ गिना जाऊँगा।

मैं कह दूँ न कि मैं 'आधुनिकता' के रंग में रँगा हुआ एक रंगीन-तबीअत इंसान बन गया हूँ। आप पूछ सकते हैं कि यह आधुनिकता है क्या बला? और, मैं कहूँगा कि आपने पाश्चात्य साहित्य नहीं पढ़ा, वरना आप ऐसे सवाल न पूछते। नाम न गिनाऊँगा—केवल यह कहूँगा कि पाश्चात्य देशों में आधुनिक कहलानेवाली कविताओं को आप पढ़िए, और उनमें आपको एक नवीनता मिलेगी। नवीनता के पीछे दीवानी दुनिया ने एक बार नहीं, अनेकों बार फ़तवा दिया कि जो कुछ है, वह नवीनता है। और, 'आधुनिकता' के नाम पर हिंदी में जो कुछ अभी तक लिखा गया है, वह अपूर्ण है, वास्तव में हास्यास्पद है। बस, आधुनिकता में अभी हिंदी के कविगण पाश्चात्य कलाकारों से बहुत पीछे हैं। और, मैं कहता हूँ कि बने तो मीर—नरक का राज्य स्वर्ग की ग़ुलामी से अच्छा है। इसीलिये हिंदी के कलाकारों को मैं युग से पिछड़ा हुआ पाता हूँ।

'एक दिन' में आधुनिकता के पूर्ण लक्षण मिलेंगे—आधुनिकता का वह महाकाव्य कहा जा सकता है। हमारे पुराने आचार्य चकित और विस्मित हो जाएँगे—हमारे नवीन पंडित 'वाह-वाह'

कह उठेंगे। लेकिन 'एक दिन' को समझेंगे लोग कम ही। समझ की कमी है न! अपना-अपना अर्थ लोग लगाएँगे, अपना-अपना मत लोग निर्धारित करेंगे। नहीं, भूल करता हूँ। हिंदी में लोग अर्थ लगाते ही कब हैं—मत निर्धारित ही कहाँ करते हैं। हिंदी के पाठक सब-के-सब लेखक हैं, और लेखक होने की हैसियत से वे पढ़ना और समझना अपनी शान के खिलाफ़ समझते हैं। एक-से-एक मूर्ख और बदतमीज़ आदमी आलोचक और शैलीकार बन गए हैं—आप इन लोगों में एक दिन के लिये मुझे भी मान सकते हैं, और इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं।

मैंने कहा न कि एक दिन के लिये मैं बुद्धि के ऊपर उठ गया हूँ—एक नशा-सा मुझ पर सवार है। दुनिया की रंगीनियों में रँगा हुआ मैं वह इंसान हूँ, जो ग़फ़लत के परदे पर सारा सौंदर्य उँडेले दे रहा है। छायालोक के अंधकारमय पट पर अंकित मैं एक प्रकाशवान् चित्र हूँ, जो दुनिया के आगे स्वप्नों का सौंदर्य पेश कर रहा है। लूटो मेरे भाई—मैं निधियाँ लुटा रहा हूँ—सोना, चाँदी, ईंट, पत्थर, सभी कुछ समान भाव से।

(४)

इस पुस्तक की तह में एक रहस्य है, मैं रहस्यवादी बन गया हूँ न! रहस्य से मैं दुनिया को ढक देना चाहता हूँ; रहस्योद्घाटन मेरा काम नहीं। दुनिया रहस्य चाहती है, स्पष्टता से उसे अरुचि-सी है। और, इसलिये इस पुस्तक की तहवाले रहस्य पर मैं प्रकाश डालने की इच्छा रखते हुए भी मौन रहने को विवश हूँ। बहुत संभव है, भविष्य में यह परदा फ़ाश हो जाय—बुद्धि की विजय हो, और रहस्य प्रकट हो जाएँ। क्योंकि मैं लगातार देखता रहा हूँ

कि मनुष्य की बुद्धि अभी तक अनगिनती रहस्यों को सुलझा चुकी है। पर अभी, इस समय मैं मौन ही रहूँगा—मौन रहने में ही मेरा कल्याण है, इस पुस्तक का कल्याण है, पढ़नेवाले का कल्याण है।

आप कह सकते हैं कि मेरी बात आपकी समझ में नहीं आती, और अगर आप यह कहेंगे, तो ग़लत न कहेंगे। पर इसमें मेरा दोष क्या? मैं आपसे पूछता हूँ, यहाँ किसकी बात कौन समझता है। कब हिटलर की बात चैंबरलैन ने समझी, कब जिन्ना की बात गांधी ने समझी? सब अपनी-अपनी कहते हैं, दूसरों की सुनने को कोई तैयार नहीं, और दूसरों की न सुनने की तह में दूसरों की न समझने का भाव है। लिहाज़ा आपकी शिकायत किसी क़दर बेजा ही होगी—और शिकवा-शिकायत से दूर रहने की मैं आपको सलाह दूँगा। आख़िर दो दिन की ज़िंदगी मौज से क्यों न गुज़ारी जाय—आप मेरी सुनें, और लुत्फ़ लें; और मैं आपकी सुनूँ और हँसूँ।

मेरे दोस्तो, मैं आप लोगों के सामने जो यह कैफ़ियत पेश कर रहा हूँ, इससे आप यह न समझ लें कि मैं आप लोगों की ख़ुशामद करता हूँ या आप लोगों से डरता हूँ। मैं कह चुका हूँ कि मैं पैग़ंबर हूँ, मैं हक़ीक़त हूँ। मुझमें जनून है, मस्ती है, रंगीनी है। आप कहीं यह न समझ बैठिएगा कि मैं पिए हुए हूँ—पीना मैं हराम समझता हूँ। मैं आपसे जो इतना कह रहा हूँ, वह इसलिये कि कहीं आप यह न कह लें कि लेखक और प्रकाशक ने मिलकर आपको ठग लिया। लिहाज़ा आपके पढ़ने की ज़्यादा-से-ज़्यादा दिलचस्प सामग्री मैं आपके सामने पेश कर रहा हूँ। पैसों के लिये लोग साधु बनते हैं, महंत बनते हैं, नेता बनते हैं, देश-भक्त बनते

हैं। और, इसलिये अगर पैसों के लिये मैं थोड़ी देर के लिये रहस्यवादी बन गया, तो आपको मुस्कराकर "शाबाश!" कह देना चाहिए। मेरे एक-आध दोस्त तो इसी पैसे के लिये रहस्यवाद के आचार्य बने बैठे हैं—उनकी हुलिया अगर आप देखें, तो आप प्रेम से गद्‌गद हो जायँगे।

यह पैसा बुरी बला है—इसके सामने सभी को झुकना पड़ता है। ग़रीब साहित्यिक की स्थिति बड़ी नाज़ुक होती है। पैसे के वास्ते उसे किताबें लिखनी पड़ती हैं, भूमिकाएँ लिखनी पड़ती हैं, और कभी-कभी फ़िल्म-कंपनियों की नौकरियाँ करनी पड़ती हैं। मैंने यह सब किया है—साफ़-साफ़ कहे देता हूँ, छिपाऊँ क्यों। एक फाटका या सट्टा बचा है, उसे भी करने लगता, अगर एक-आध साहित्यिक, जो मुझसे बाज़ी मारने पर तुले हैं, पहले ही उसमें न कूद पड़े होते। बहरहाल जाने दीजिए इस बात को, न-जाने कहाँ-का-कहाँ बहँक गया।

बात रहस्य और रहस्यवाद से उठी थी, और बात पूरी करनी है। तो जनाबमन, जब साहित्य में क़दम रक्खा था, तब रहस्यवाद का हिंदी में ज़ोर था। पर मैंने उस समय अपने को रहस्यवाद के नाक़ाबिल समझा। सच कहता हूँ, मेरी ज़िंदगी की असफलता की एक बहुत बड़ी वजह यह है कि मुझे रहस्यों पर कभी विश्वास ही नहीं रहा। एक देवी से प्रेम के अपने रहस्य को रहस्यवाद का रूपक न दे सकने के कारण मैं कुछ दिनों के लिये एक निराश प्रेमी भी रह चुका हूँ। वह सब बीत चुका। अब मैं समझदार हो गया हूँ, लेकिन अफ़सोस यह है कि इतना ज़्यादा समझदार हो गया हूँ कि अब कामयाबी पर ख़ुशी और नाकामयाबी पर अफ़सोस तक नहीं

रह गया। लिहाज़ा रहस्यवाद की अब अपनी ज़िंदगी में मैं ज़रूरत नहीं समझता। लेकिन मौक़ा पड़ने पर मैं बड़े-से-बड़े रहस्यवादी के कान काट सकता हूँ।

(५)

काफ़ी लिख चुका हूँ—अब अंत में कुछ थोड़ी-सी फ़र्ज़अदाई भी करनी है। इस पुस्तक को लिखने में मुझे हिंदी के दो तरह के कवियों से प्रेरणा मिली—प्रथम तो मुक्त काव्य लिखनेवाले कवियों से और दूसरे गद्य-काव्य लिखनेवाले कवियों से। 'एक दिन' की कविताओं का रंग प्रतिबिंब का रंग है—अर्थात् उनमें हिंदी के क़रीब-क़रीब सभी रंग हैं, और साथ ही पाश्चात्य साहित्य के भी अनेकों रंग हैं। इन रंगीनियों को 'एक दिन' में ला सकने के लिये मैं हिंदी तथा पाश्चात्य साहित्य के रंगबाज़ों का आभारी हूँ।

और, अंत में मैं अपने कृपालु मित्र श्रद्धेय पंडित वेंकटेश-नारायणजी तिवारी का आभारी हूँ, जिन्होंने अपनी अमूल्य भूमिका से मेरी पुस्तक को सजाया है।

भगवतीचरण वर्मा

भूमिका

बाबू भगवतीचरण वर्मा हिंदी के प्रसिद्ध और प्रतिभावान् कवि हैं। इनकी उत्कृष्ट रचनाओं से हिंदी-प्रेमी भली भाँति परिचित हैं। उपन्यास और कविता से आपको विशेष रुचि है, और इन क्षेत्रों में आपने जो क्रांतियाँ उपस्थित की हैं, वे साहित्य के इतिहास में युगांतरकारिणी हैं। एक समय था, जब कविता चारणों के मुख से संरक्षकों की स्तुति के रूप में प्रकट होती थी। इसका दुधारा राजदरबारों और रणांगणों में चमकता था। पर समय के फेर से अत्याचारियों के दमन के आगे इसे ईश्वर की शरण लेनी पड़ी। उस समय कबीर, सूर और तुलसी के प्रसाद से इसने भक्ति का जो रूप पाया, वह अनन्य और अनुपम था। ऐसा लगता था, मानो यह शब्द-ब्रह्म की साक्षात् मूर्ति हो। पर स्वार्थ-सेवी मनुष्यों ने फिर इसे नीचे गिराया, और उनकी माया से वशीभूत होकर यह फिर नर-लोक में आई। अब की बार इसे नायिकाओं का रूप मिला। देव तथा मतिराम ने इसे मनमाना नचाया। कभी छमाछम करती इठलाती थी, तो कभी प्रिय के विरह में बेसुध दिखाई देती थी। कोई स्वकीया कहता था, तो कोई परकीया। गणिका-वृत्ति भी वर्जित न थी, जितना नीचे यह गिराई जा सकती थी, गिराई गई। एक दिन वह था, जब यह राम और रहीम के गुण गाती अनंत की ओर उड़ी जा रही थी, पर इस रीति-काल

में पतन होते-होते यह नरक में जा गिरी। वहाँ कीचड़ में ऐसी निमग्न हुई कि उबरना कठिन था, पर भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इसे सुधा-पान कराया। यह सचेत हुई। इसे अपनी दशा पर सोच हुआ, और यह कामुक कवियों की कुसंगति छोड़ समाज के साथ चली। पं० श्रीधर पाठक ने इसका स्वागत किया, मंगल-गान रचे। फिर तो धीरे-धीरे इसके कान में देश-सेवा का मंत्र फूँका जाने लगा। बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने इसे दीक्षा प्रदान करके देश तथा समाज की सेवा में प्रतिष्ठित कर दिया। अब यह अपने कर्तव्य में दृढ़ है, और आज 'एक दिन' आया है, जो पाठकों के सामने प्रत्यक्ष है कि यहाँ वह अपनी समस्त प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के साथ हमारे सामने एक नए रूप में उपस्थित है।

यह रूप निराला है—प्रसाद की यहाँ पहुँच नहीं, न यहाँ नदियों की केवल ठल-मल रल-मल है, वरन् जीवन के सच्चे और गहन-तम विचार सरल, सुबोध और सरस ढंग से वर्णन किए गए हैं।

'एक दिन' में कवि के जीवन-संबंधी विचार हैं, जो भारत के उच्च-से-उच्च दार्शनिक सिद्धांतों से समता कर सकते हैं। समय की निस्सीमता और सत्यता की ओर ध्यान देते हुए उसका विचार है कि मनुष्य का जीवन क्षण-भंगुर है। एक दिन के प्रत्येक पल में जीव और मृत्यु छिपे हुए हैं, पर जीव ध्यान नहीं देता, सारी शिक्षाओं की उपेक्षा करता है। वह अपनी धुन में मस्त है, और

पढ़ रहा है यहाँ सस्वर—
सोलह दूना आठ!

किंतु जो विचारशील हैं, उनकी प्रज्ञा प्रश्नों में बँधी हुई है। उनके लिये अस्तित्व, जन्म और मरण प्रश्न हैं। ये

प्रश्न दंशन कर रहे बन कुटिल तक्षक—
और फैले यहाँ बनकर सहस्रबाहु।

कौतूहलों से मनुष्य परेशान है। उसका

जीवन है एक जिज्ञासा—
जि
ज्ञा
सा
?
हाँ
!
लेकिन
क्या समझेगा मानव ?
जब कि बीन जर्जर है, टूटा है तार!
हृदय में सुप्त हुई चेतना-झंकार
जवाकुसुम, शेफाली, जूही की कली
खिली, मुरझाई, बह चली
भर गई सौरभ से गली-गली,

इन दृश्यों के तत्त्व को समझने के लिये पैनी दृष्टि चाहिए—

कवि सुनता है,
देखता है,
रोता है,
गाता है,

सारा संसार
यहाँ हँस रहा है
भूला-सा !

वह आँसू की दो बूँदों में करुण-रस का स्रोत देखता है। मनुष्य की स्वतंत्र सत्ता का मूल्य वह जानता है। वह आत्मा में परमात्मा को देखता है। मैं एकाकी—मेरे एकाकीपन में तुम निहित हो मेरे देव, मैंने तुम्हें अपने से पृथक् कब माना। और, कहीं-कहीं तो सगर्व कहता है कि मनुष्य उससे श्रेष्ठ है। जैसे—

"उन ऊँचे-ऊँचे प्रासादों को हमने बनाया है—हमने !
तुम्हारी रचना कितनी अधूरी है, कितनी कुरूप है !
ऊँची-नीची, कठोर-नुकीली चट्टानों को तुमने बनाया।
उन चट्टानों को काट-काटकर हमने समतल, सुंदर कलात्मक
भवनों का निर्माण किया है—जो स्वर्ग से टक्कर ले सकते हैं।"

यदि श्रेष्ठता अस्वीकार है, तो एक का अस्तित्व दूसरे पर अवश्य निर्भर है।

पर कवि को अहम्मन्यता प्रिय नहीं। वह कहता है—

"कौतूहल के क्षीर-सागर में निवास करनेवाले प्राणी ने अपने अहम का गरल क्षीर-सागर में घोल दिया।"

उसे जीवन का एकाकीपन प्रिय नहीं। वह मनुष्य से विनय कराता है। उससे कहलवाता है—

"तुम समर्थ हो—अपनी सामर्थ्य से तुम्हीं हम असमर्थों की अचिरता को चिर-जीवन प्रदान कर सकते हो।" पर लेखक का मनुष्य दीन और कातर नहीं। वह कहता है—

"टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी, और मैं एकाकी ! गति अनियंत्रित, चरण

शिथिल, प्राण चकित; भावना सस्मित, ज्ञान विस्मित—और मैं मौन, जीवन के अखंड विश्वास से प्रेरित अग्रसर हो रहा हूँ......"

"अथ-इति-रहित पथ! अनादि और अनंत का ज्वलंत प्रमाण अपने अंक में लिए हुए यह कभी समाप्त न होनेवाला मार्ग, कितना सँकरा और काँटों से भरा हुआ है! पर मार्ग की सँकराई में मुझे आत्मा का विस्तार मिला, काँटों को मैंने फूल समझ रक्खा है! प्राणेश! मेरा साहस देखोगे?"

प्राणी दृढ़ता-पूर्वक कहता है—

"...मार्ग पराजित होगा। उसे अपने ऊपर अभिमान है, और विजय मुझे मिलेगी, क्योंकि मुझे तुम पर अभिमान है मेरे स्वामी।"

उसका उत्साह लेखक के शब्दों में देखिए —

कर्णधार, खोलो नौका!
अंधकार है? तो उससे क्या?
हमें पार जाना ही होगा!

वह जयशंकर'प्रसाद'जी की तरह माँझी से यह नहीं पूछता—

"माँझी, साहस है, खे लोगे?"

उसे अपने ऊपर विश्वास है। विजय भी ऐसे ही पुरुषों को मिलती है। आज संसार में सत्ता बनाए रखने के लिये द्वंद्व मचा हुआ है। इस युद्ध में उत्साह-हीन निर्बलों का कहीं ठिकाना नहीं। जिन्हें अपने बल और शक्ति पर विश्वास है, संसार उन्हीं के लिये है, अन्यथा दूसरे उन्हें मिटा देने के लिये तैयार हैं।

लेखक ने पाठकों को उत्तेजित करने के लिये बड़े ओज-पूर्ण शब्दों का प्रयोग किया है। वह स्वार्थ को सर्वोपरि मानता है। परमार्थ का इस जग में क्या काम। यदि परमार्थ है, तो उसमें भी स्वार्थ छिपा हुआ है। लेखक की सूझ और उक्ति देखिए—

तुम कहो स्वार्थ, मैं कहूँगा परमार्थ !
परम मैं—परम अहम !
तुच्छ यहाँ सब कुछ—तुम कर लो शास्त्रार्थ
यदि
मैं नहीं, तो नहीं विश्व,
मुझसे है विश्व और मुझसे भगवान
अहम—अहम—सोऽहम—अस्मि—अहम ब्रह्मास्मि !
तत्त्वान्वेषण करो—यही एक तत्त्व,
यत्र-तत्र-सर्वत्र केवल एक स्वार्थ ;
स्वार्थ एक सत्य—
और सब कुछ अनर्थ
इसलिये कहता हूँ
स्वार्थ ही जगत में है एक परमार्थ !

पर लेखक यह नहीं चाहता कि उसका पाठक स्वार्थ से मदांध हो जाय। वह व्यष्टि का समर्थन करते हुए समष्टि की उपेक्षा नहीं करता। वह कहता है—

परदेसी, कुछ विश्वास करो !
यहाँ सभी परदेसी हैं, इन सबको ही तो
दूर-देश को जाना है ;
सभी दुखी हैं, सभी थके हैं, सभी यहाँ पर माँग रहे हैं

सहानुभूति,

इस सहानुभूति को ध्यान में रखते हुए यह समाज के अंदर विषमता या असमता नहीं देख सकता। उसे मिल-मालिकों की विलासिता और मज़दूरों की निर्धनता देखकर दुख होता है। दोनों की तुलना करते हुए वह कितना मर्मस्पर्शी तथा हृदय-द्रावक चित्र खींचता है। देखिए—

भोंपू बजा मील का !
टिड्डी-दल-से उमड़ पड़े थके मज़दूर।
अति श्रम से चकनाचूर !

ये थके हुए मज़दूर समाज की चक्की से चूर-चूर होकर निकल रहे और उतावले होकर जा रहे हैं।

जाते हैं घर को वे—
और कुछ थोड़े-से
जा रहे हैं हौली को पीने को ताड़ी !
उनके कानों को बहरा करती और आँखों में धूल झोंकती हुई
सामने से भों-भों करती
निकल गई एक बड़ी मोटर गाड़ी।
उसमें बैठा था मिल का मालिक !
जा रहा था वह क्लब को
पीने को मदिरा !

❋ ❋ ❋

रात में लौटेगा मस्त झूमता हुआ,
रात में लौटेगा मज़दूर भूमि चूमता हुआ

अब पनघट की पनिहारिन को देखिए। मिट्टी का घड़ा है, शृंगार

का अभाव है, भूख से पेट जला जा रहा है, सूर्य तप रहा है, प्यास लगी है, पर दूसरों की प्यास बुझाने के लिये कठिन-से-कठिन परिश्रम कर रही है। इस पद में लेखक के भावों की तीव्रता, उसका चित्रण और शब्द-परिज्ञान ध्यान देने योग्य है। देखिए—

पनघट की पनिहारिन।
स्वर्ण-कलश नहीं, मृत्तिका का घट शीश पर,
उर में शृंगार का अभाव, केवल क्षुधा-ज्वाला!
ग्रीष्म-मध्याह्न, तृपा-आकुल प्रति अंतर
सिंचित करने को सकल-जग
संकुचित, पीली, सिहरी, कृश, दुर्बल,
कठिन रज्जु खींच रही!
कोमल हाथों में पड़ गए कठिन ढट्ठे
और नीच, लंपट लगाते हैं ठट्ठे;
अबला वह, सबला बन झेलती है
निष्ठुरता के कठिन प्रहार!
मौन, निर्वाक वह कभी-कभी सोच लेती
दासता के जीवन पर, अपनी विवशता पर—
उसके बाद, छोड़ एक दीर्घ निःश्वास,
प्यासों का करने कल्याण,
खींचने लगती है रज्जु।
रज्जु यह जीवन की
कितनी कठिन है!
लिए है कितना भार!
किंतु उस भार को वहन करना ही है

दे रही हमको स्वर्गिक संदेश
पनघट की पनिहारिन।

ऊपर दिए काव्य में जो ध्वनि है, वह हृदय को स्पर्श करनेवाली है।

कविवर पं० सूर्यकांतजी त्रिपाठी 'निराला' हिंदी के विख्यात कवि हैं। उनकी प्रतिभा बहुधा पाठकों को अप्रतिभ कर देती है। कोई-कोई तो ज्ञानोपहत होकर काव्य की निंदा करने लगते हैं। उनके लिये 'निराला'जी के साहित्य में नीचे अथाह पारावार तो ऊपर अनंत शून्य दिखाई देता है। इसके लिये 'निराला'जी दोषी नहीं। उनका साहित्य ऊँचा तथा गंभीर है। उसके अंदर पैठने और रसास्वादन करने के लिये अभ्यास और मनन की आवश्यकता है। वहाँ ऐरे-गैरों की पहुँच नहीं। 'निराला'जी का पाठक भी निराला ही होगा। उनकी 'वह तोड़ती पत्थर'वाली कविता देखिए—

वह तोड़ती पत्थर।
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
वह तोड़ती पत्थर।
कोई न छायादार,
पेड़ वह, जिसके तले बैठी हुई, स्वीकार;
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन प्रिय, कर्मरत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार,
सामने तरुमालिका, अट्टालिका, प्राकार।
चढ़ रही थी धूप,
गर्मियों के दिन,

दिवा का तमतमाता रूप ;
उठी झुलसाती हुई लू ;
रुई-ज्यों जलती हुई, भू ;
गर्द चिनगीं छा गई ;
प्राय: हुई दुपहर—
वह तोड़ती पत्थर ।
देखते देखा मुझे, तो एक बार
उस भवन की ओर देखा छिन्नतार ;
देखकर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं ;
सजा सहज सितार,
सुनी मैंने वह
नहीं जो थी सुनी झंकार ।
एक छन के बाद वह काँपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा—
"मैं तोड़ती पत्थर ।"

इन दोनो रचनाओं में—जिन्हें हम काव्य कह सकते हैं, या जो भावावेश से गीत के रूप धारण कर सकते हैं—ध्वनियों का लक्ष्य एक ही है । पनिहारिन और पत्थर तोड़नेवाली दोनो समाज की शिकार हैं—उसके अन्याय से पीड़ित हैं, पर एक हथौड़ा लेकर हृदय-पत्थर को चूर-चूर कर देना चाहती है, तो दूसरी जीवन का भार लिए आततायियों की प्यास बुझा रही है । पत्थर तोड़नेवाली

अबला आज सशक्त और शरीर से संपन्न है। वह अपने ठुकरानेवाले का मुँह तोड़ देगी, पर पनिहारिन दुखी है। वह प्यासों का सूखा मुख नहीं देख सकती, मिट्टी के घड़े से उन्हें तृप्त करेगी। 'निराला'जी की पत्थर तोड़नेवाली प्रतिहिंसा की मूर्ति है, तो वर्माजी की पनिहारिन परोपकार की मूर्ति। मेरी समझ से पाठकों को भी हथौड़े के सामने पनिहारिन का जीवन अधिक प्रिय होगा।

दोनो कवियों पर समाज की वर्तमान स्थिति का प्रभाव पड़ा है, लेकिन व्यक्तिगत भेद के कारण विचार-धारा में अंतर हो गया है। काव्य-शैली प्राय: एक-सी है। कविता का यही स्वरूप आज वांछनीय और उपयोगी है। ऐसी ही रचनाओं द्वारा साहित्य-शब्द की सार्थकता सिद्ध होती है, और ऐसी रचनाओं के करनेवाले समाज के सच्चे हितैषी हैं। वर्माजी का 'एक दिन' इसका प्रमाण है। इसमें उन्होंने विभिन्न विषयों पर अपना मत प्रकट करके दिखला दिया है कि हमारी सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक स्थिति क्या है? सर्वत्र अशांति छाई हुई है। माना, अशांति विकास तथा उन्नति की द्योतक है, पर लेखक उससे दूर रहना चाहता है। उसे बोस और पटेल तथा हिंदू और मुसलमान के झगड़े पसंद नहीं। वह साम्यवाद तथा शांतिवाद का समर्थक है।

वह कहता है, लड़ने से काम नहीं चलेगा, मूर्ख न बनो, मुख्य प्रश्न रोटी का है, उसे हल करने का प्रयत्न करो। कैसे व्यंग्य-पूर्ण शब्दों में वह कहता है—

मुख्य प्रश्न रोटी का—
उसको वे भूल गए,

उठा लिया है आज
इन्होंने प्रश्न एक दाढ़ी और चोटी का !

* * *

भारत की जन-संख्या वृद्धि कर रही है, उसे
कम करने का काम
हिंदू-सभा ने
मुसलिम लीग ने
उठा लिया है।

इसी प्रकार जिन मशीनों के प्रयोग से आज घर-घर बेकारी और बीमारी फैल रही है, उनका वह विरोधी है। एक स्थल पर उसकी विनोद-पूर्ण शैली तथा सिद्धांत का समर्थन देखिए—

गाँवों में घुस गई आँटा की चक्की !
उसी तरह जैसे ग्रांड-ट्रंक-रोड पक्की !
इससे अनेक संक्रामक रोग फैल गए हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'एक दिन' एक निश्चित सिद्धांत का प्रतिपादक तथा उपयोगी ग्रंथ है। पर इससे यह न समझना चाहिए कि यह कोई राजनीतिक या उपदेशात्मक रचना है। इसमें उपयोगिता के साथ ही कवि का कौशल भी वर्तमान है। आज दस-पंद्रह वर्ष से हिंदी में जो नई काव्य-धारा तथा शैली प्रवाहित हो रही है, उन सबका आदर्श वर्माजी ने 'एक दिन' में उपस्थित कर दिया है। यह उनकी असाधारण सामर्थ्य और प्रतिभा का प्रमाण है। इसके प्रत्येक पल में जो जगमगाहट और मनोहरता है, वह हृदय को प्रवाहित किए बिना नहीं रह सकती। उसकी सजग

कल्पना का चित्र देखिए। कवि प्रातःकाल का वर्णन करते हुए कहता है—

रवि हँसा—
नाचती हुई अवनि पर
नभ से
उतरी प्रभात की प्रथम किरण,
कलरव के स्वर का मधुर-मधुर
संगीत भर गया अंबर में
जीवन जागा !
तम भागा !
आशाएँ, अभिलाषाएँ, आकांक्षाएँ
सब सोते-सोते जाग उठीं !
मानव के उर में उथल-पुथल मच गई अचानक,
वह कोलाहल, वह हलचल जग में
बढ़ता जाता प्रतिपल—झलमल-झलमल
सरिता बहती भर-भरकर कोमल स्वर-लहरी।
तुम
अभी सो रहे हो क्यों;
उठो तो आँखें खोलो,
बोलो—जग से कुछ बोलो,
आराम किया है सकल रात,
अब समय हुआ है काम करो,
पहले दिन को सार्थक करके
फिर

शाम करो!
रोने को सारी रात पड़ी,
तुम हँसो,
क्योंकि
रवि हँसा!

कितना वास्तविक चित्रण है। सूर्योदय के साथ जगत् जागता दिखाई देता है। सारे संसार में कोलाहल मच गया है, कवि भी कहता है—

अब समय हुआ है, काम करो,

पर नैराश्य उसका पीछा नहीं छोड़ता। वह दिल को आश्वासन देता है—

"रोने को सारी रात पड़ी,"

हँसने के लिये वह प्रोत्साहित करता है, पर इसलिये नहीं कि चित्त में प्रसन्नता है, वरन् इसलिये कि रवि हँसा, तो तुम भी हँसो। दिन ढल रहा है। कवि संध्या का वर्णन करता है—

श्रांत!
संध्या विवर्ण, जीर्ण-शीर्ण दिग-दिगंत!
वनस्थली धूमिल,
तरुणी के दृग स्वप्निल,
विहगावलि तंद्रिल!
नील शिलाखंड-सा पड़ा है व्यापक व्योम!
सौरभ-भार वहन कर पवन अति मंद-शिथिल जड़ाभूत!
नभ में एकत्रित, कर रहे गोष्ठी, शत-शत देवदूत।
द्रौपदी का चीर बन आई श्यामा यामिनी

मयंक है सुदर्शन चक्र, कलंक मध्यवर्ती अनामिका !
गिरती है
यव-
निका
क्लांत जीवन पर !

इसमें जो रूपक बाँधा गया है, वह अनूठा है, और कवि की मौलिकता का परिचायक है ।

वर्माजी ने संसार का खूब अनुभव किया है, उसकी ठेस से उनके हृदय पर जो आघात पहुँचे हैं, उनकी कसक 'एक दिन' में वर्तमान है—

बृहत वट की लघुतम छाया !
गोलाकार अग्निपुंज मार्तंड उर्ध्वोन्मुख
पृथ्वी उद्भ्रांत—
अशांत वायु के प्रचंड झोंके,
मानव की झुलसती काया ;
हलाहल से पूर्ण प्याला लिए मध्याह्न !
पर इस बरगद के नीचे
जीवन की
मधुशाला ;
और इसको पीनेवाला
पूरा है
नि
रा
ला !

माला लिए वह कविता की मतवाला
सोचता है, कैसी है प्रकृति की माया !
लघु जगत में बृहत दारुण ताप !
बृहत वट की लघुतम छाया !

मार्तंड के प्रचंड प्रकोप से तपकर वह बरगद की छाया ढूँढ़ता है। यही उसकी मधुशाला है, जहाँ बैठकर वह मतवाले कवि के समान मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास की ओर ध्यान देता है।

उसकी कविता के उदाहरण देखिए—

मन-रंजन, दुख-भंजन प्रिय की नीराजना !
चपल-चरण, चंचल गति और विसुध नर्तन
केवल इसी में प्रियतमा की साधना !
नयनों में पावस ;
चंद्रमा बने हैं प्रिय, दूर हुई दुख की अमावस !
सस्मित तू, विस्मित जग, चकित मौन याभा
ईमन के स्वर भर,
भिल्ली-झंकार पर,
दीपावलि जागे ;
रस-राग चले आगे
और उसके सहारे तू चली चले श्यामा !

ऊपर लिखा हुआ पद अनेक कवि और कवयित्रियों को नीचा दिखा सकता है। उनकी सुकुमार और जटिल उक्तियाँ इसके सामने हेय हैं।

इतना ही नहीं, वर्माजी अपनी उत्कृष्ट रचनाओं से बड़े-बड़े

अहंकारी कवियों का 'अहम्' तोड़ सकते हैं। नीचे दी हुई त्रिवेणी की धार के सम्मुख कौन खड़ा होगा—

अंतरंग जड़-जंगम !
संगम सुधा-विष का,
जीवन का अरुण स्रोत—यही है त्रिवेणी !
उत्थान-पतन के बीच अधर,
हरि-हर के पहले हैं ब्रह्मा ;
अरुण, नील, श्वेत कमल,
श्याम, श्वेत रतनारे लोचन
निर्विवाद अपवाद-रहित यह
परम सत्य !

जिस परम तत्त्व का निरूपण कवि ने इस पद में किया है, उसके सामने रहस्यवादियों का रहस्य और ज्ञानियों का ज्ञान क्षण-भर भी नहीं टिक सकता।

वेंकटेशनारायन तिवारी

एक दिन

[१]

एक दिन !
चौबीस घंटे—
एक घंटे में मिनट हैं साठ ;
मिनट में है पल !
पलों में कितने विपल हैं—प्रति विपल है एक जीवन !
विपल ही में मृत्यु—पढ़ता जगत जिसका पाठ।

एक दिन

जगत मिथ्या तथा नश्वर,
समय ही तो एक गुरुतर सत्य।
समय की अवहेलना कर सकल नश्वर विश्व
पढ़ रहा है यहाँ सस्वर—
सोलह दूना आठ!
निज गुरु, असीमास्तित्व लेकर
निज अनंत रहस्य विस्मित
है बिखेर रहे यहाँ पर
स्वर्ण की प्रातः मनोहर, रजत-तारों की रुपहली रात!
किंतु हमने क्या किया?
हम मृतक-से बैठे रहे निस्तब्ध। मौन
आया—फिर चला गया
एक दिन!

[२]

किस प्रकार ?

किस कारण ?

कितना ?

कैसे ?

कौन ?

कहाँ ?

कब ?

क्यों ?

क्या ?

प्रश्नों में बँधी हुई मानव की प्रज्ञा ।

प्रश्न अस्तित्व,

प्रश्न जन्म,

प्रश्न मरण,

प्रश्न दंशन कर रहे बन कुटिल तक्षक—

और फैले यहाँ बनकर सहसबाहु ।

प्रश्न नीलाकाश—
प्रश्न रवि-शशि—
प्रश्न उडुगण—
ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शिशिर, हिमंत—
ये सभी हैं प्रश्न—यदि कोई नहीं, तो एक मधुर वसंत !
उसमें हम भूल जाते दुख-परिताप
उसमें हम खो देते अपने को आप
उसमें है सकल पुण्य, वहाँ नहीं पाप,
इसीलिये वह वसंत
मिथ्या है, जीवन है जीवन;
जीवन है एक जिज्ञासा—
जि
ज्ञा
सा
?
हाँ
!

[२]

लहरों का जल टलमल-टलमल !

मानव का मन उन्मन-उन्मन !

वीक्षण आपेक्षित अराल

आगतोन्मुख, प्रस्थानोन्मुख, किंतु नहीं आगत, प्रस्थान,

अस्वर या निःश्वर ये सकल छंद-ताल

इष्ट ?

अवशिष्ट ?

नहीं जीवन का मार्ग निर्दिष्ट

लोल-लोल लोचन लिए हैं कोलाहल,

श्रवणों में व्याप्त शुभ्र, सुंदर सुदृश्य ।

क्या समझेगा मानव ?
जब कि बीन जर्जर है, टूटा है तार !
हृदय में सुप्त हुई चेतना-झंकार
जवाकुसुम, शेफाली, जूही की कली
खिली, मुरझाई, बह चली
भर गई सौरभ से गली-गली,
कवि सुनता है,
देखता है,
रोता है,
गाता है,
सारा संसार
यहाँ हँस रहा है
भूला-सा !

[४]

जगमगाईं तारिकाएँ !
रो रहा है रवि क्षितिज पर मौन,
पूछता है वह अमा से—सजनि, तुम हो कौन ?
क्षितिज को छूता हुआ जल हिल पड़ा,
पवन अपने आप ही सिहरा मुदित
लिए सौरभ
गुनगुनाता
और गाता
फिर अमा ने कहा—
देखो, शमा है वह जल उठी।

एक दिन

क्षमा करना देव !

तुम मुझसे पराजित हो गए,

पर यहाँ लघु-लघु

दीप अगणित जल रहे हैं,

जगमगाईं तारिकाएँ,

इन्होंने मुझको पराजित कर दिया !

सुना रवि ने—

कुछ सहमकर, कुछ सकुचकर

लाज से वह हो गया अति लाल !

और जल में

डूबा !

[४]

उमड़ता अथह पारावार !
दो नेत्र हैं, दो बिदु हैं ,
पर लोचनों में विश्व का उल्लास था—
दो बूँद—इनमें जगत का उल्लास डूबा !
आज कवि ने पा लिया है
सर्व-व्यापी करुण-रस का स्रोत !
क्यों रात रोती ओस बनकर ?
क्यों दिन जला करता यहाँ बनकर भयानक धूप ?

बस एक उत्तर—
उन तुम्हारे लोचनों में
उमड़ आए अश्रु के दो बूँद
और
देखा विश्व ने
उमड़ता अथह पारावार !
प्रिय, रोक दो तुम आज अश्रु-प्रवाह,
नहीं तो जग भस्म होगा,
क्योंकि
वह भर रहा है यहाँ निशि-दिन
एक जलती आह !
यह तुम्हारा अथह पारावार
बन रहा है वाष्प,
और प्रिय, यह वाष्प ही तो है जगत की आह !

[६]

आज दीपक बाल ले !
आ रहे प्रियतम थके-से
प्रेम में तेरे छके-से,
बावली !
निज हाथ में जयमाल ले !
शून्य मंदिर
हँस रहा है किस प्रतीक्षा में, समझ !
अब शोक और विषाद क्या ?
हँस ले तनिक
शृंगार कर ले—

मोतियों से माँग भर ले !
सेज जो सूनी पड़ी थी,
नई कलियों से सजा ले तू उसे ।
देख, तेरे बाग में
बेला, चमेली, जुही और गुलाब
खिल रहे उल्लास में
प्रिय आज तेरे आ रहे, यह जानकर !
जा, उन्हें तू तोड़ ला,
अश्रुओं से जिन्हें सींचा था इसी दिन के लिये !
हो रही है शाम,
घिर रही है कालिमा,
तू पथ दिखा—भूलें न वे ।
कोमल पदों में गड़ न जाएँ
कहीं कंकड़ और काँटे,
इसलिये तू ऐ सुहागिन,
आज दीपक बाल ले !

[७]

रवि हँसा—

नाचती हुई अवनि पर

नभ से

उतरी प्रभात की प्रथम किरण,

कलरव के स्वर का मधुर-मधुर

संगीत भर गया अंबर में

जीवन जागा !

तम भागा !

आशाएँ, अभिलाषाएँ, आकांक्षाएँ

सब सोते-सोते जाग उठीं !

एक दिन

मानव के उर में उथल-पुथल मच गई अचानक,
वह कोलाहल, वह हलचल जग में
बढ़ता जाता प्रतिपल--झलमल-झलमल
सरिता बहती भर-भरकर कोमल स्वर-लहरी।
तुम
अभी सो रहे हो क्यों;
उट्ठो तो आँखें खोलो,
बोलो—जग से कुछ बोलो,
आराम किया है सकल रात,
अब समय हुआ है काम करो,
पहले दिन को सार्थक करके
फिर
शाम करो !
रोने को सारी रात पड़ी,
तुम हँसो,
क्योंकि
रवि हँसा !

[८]

परदेसी, कुछ विश्वास करो !
यहाँ सभी परदेसी हैं, इन सबको ही तो
दूर-देश को जाना है;
सभी दुखी हैं, सभी थके हैं, सभी यहाँ पर माँग रहे हैं
सहानुभूति,

एक दिन

दया,

प्रेम,

करुणा !

परदेसी, यदि तुम्हें चाहिए

इस जग का विश्वास,

तो तुम भी

कुछ विश्वास करो !

[६]

पुलकित, मुदित, चकित, अनियंत्रित,
विचलित, थकित, दुखित,
देख रहा संसार !
नहीं मिलता उसको जीवन का सार।

एक विस्तार --
धूल और पत्थर,
निःस्वर और सस्वर,
वर्षा का शीतल जल,
और मध्याह्न प्रखर,
विश्व-जड़ चेतना का करता अभिमान !

[१०]

श्रांत !

संध्या विवर्ण, जीर्ण-शीर्ण दिग-दिगंत !

वनस्थली धूमिल,
तरुणी के दृग स्वप्निल,

विहगावलि तंद्रिल !

एक दिन

नील शिलाखंड-सा पड़ा है व्यापक व्योम !
सौरभ-भार वहन कर पवन अति मंद-शिथिल जड़ाभूत !
नभ में एकत्रित, कर रहे गोष्ठी, शत-शत देवदूत।
द्रौपदी का चीर बन आई श्यामा यामिनी
मयंक है सुदर्शन चक्र, कलंक मध्यवर्ती अनामिका !
गिरती है
यव
निका
क्लांत जीवन पर !

[११]

बृहत्त वट की लघुतम छाया !
गोलाकार अग्निपुंज मार्तंड ऊर्ध्वोन्मुख
पृथ्वी उद्भ्रांत—
अशांत वायु के प्रचंड झोंके,
मानव की झुलसती काया;
हलाहल से पूर्ण प्याला लिए मध्याह्न !

पर इस बरगद के नीचे
जीवन की
मधुशाला;
और इसको पीनेवाला
पूरा है
नि
रा
ला !
माला लिए वह कविता की मतवाला
सोचता है, कैसी है प्रकृति की माया !
लघु जगत में बृहत दारुण ताप !
बृहत वट की लघुतम छाया ?

[१२]

टन-टन-टन-टन !

टन-टन !

दस बजे कर उठा घंटा गर्जन ।

विद्यालय-न्यायालय-कार्यालय सभी खुले,

अति शीघ्रता से कर्मचारी सब ढुले !

कर्मचारी ?
कौन कर्म ?
क्या वे कभी जान पाए जीवन का मर्म ?
दिन-रात पिसना और
उफ़ भी न करना !
बस उनका यह धर्म,
मर जाना कर्म, और मिट जाना धर्म !
टन-टन-टन-टन !
टन-टन-टन-टन !
टन-टन !
इसमें है छिपा गहन जीवन का मर्म !
समझो तो !

[१२]

भोंपू बजा मिल का !
टिड्डी-दल-से उमड़ पड़े थके मजदूर !
अति श्रम से चकनाचूर !
जाते हैं घर को वे—
और कुछ थोड़े-से
जा रहे हैं होली को पीने को ताड़ी !

सामने से भों-भों करती
निकल गई एक बड़ी मोटर गाड़ी ।
उसमें बैठा था मिल का मालिक !
जा रहा था वह क्लब को
पीने को मदिरा !
और बाल-डांस में जमेगा वह ।
रात में लौटेगा मस्त झूमता हुआ,
रात में लौटेगा मज़दूर भूमि चूमता हुआ !
पिए हुए ताड़ी,
मील के दोनों
मज़दूर और सेठ !

[१४]

कर्णधार खोलो नौका !
अंधकार है ? तो उससे क्या ?
हमें पार जाना ही होगा !
हो चुका समाप्त कार्य,
गृह में प्रतीक्षाकुल गृहिणी, कलत्र, पुत्र,
मार्ग देख-देख थकेंगे उनके नयन, चलो

कर्णधार !

क्या कहा—झंझावात ?

कर्णधार, डरते हो ? जीवन स्वयं है एक

विप्लव !

भय करते हैं कायर—खोलो नौका,

बरसे जल, उठे लहर, गिर पड़े गगन,

मुझे तो जाना है उस पार !

[१५]

मन-रंजन, दुख-भंजन प्रिय की नीराजना !
चपल-चरण, चंचल गति और विसुध नर्तन
केवल इसी में प्रियतमा की साधना !
नयनों में पावस ;

चंद्रमा बने हैं प्रिय, दूर हुई दुख की अमावस !
सस्मित तू, विस्मित जग, चकित मौन यामा
ईमन के स्वर भर,
झिल्ली-झंकार पर,
दीपावलि जागे;
रस-राग चले आगे
और उसके सहारे तू चली चले श्यामा !

[१६]

अंतरंग जड़-जंगम !
संगम सुधा-विष का,
जीवन का अरुण स्रोत—यही है त्रिवेणी !
उत्थान-पतन के बीच अधर,

हरि-हर के पहले है ब्रह्मा;
अरुण, नील, श्वेत कमल,
श्याम, श्वेत, रतनारे लोचन
निर्विवाद अपवाद-रहित यह
परम सत्य !

[१७]

पनघट की पनिहारिन !
स्वर्ण-कलश नहीं, मृत्तिका का घट शीश पर,
उर में शृंगार का अभाव, केवल क्षुधा-ज्वाला !
ग्रीष्म-मध्याह्न, तृषा-आकुल प्रति अंतर
सिंचित करने को, सकल-जग
संकुचित, पीली, सिहरी, कृश, दुर्बल,
कठिन रज्जु खींच रही !
कोमल हाथों में पड़ गए कठिन ढट्ठे
और नीच, लंपट लगाते हैं ठट्ठे ;
अबला वह, सबला बन झेलती है

निष्ठुरता के कठिन प्रहार !
मौन, निर्वाक वह कभी-कभी सोच लेती
दासता के जीवन पर, अपनी विवशता पर—
उसके बाद, छोड़ एक दीर्घ निःश्वास,
प्यासों का करने कल्याण,
खींचने लगती है रज्जु।
रज्जु यह जीवन की
कितनी कठिन है !
लिए है कितना भार !
किंतु उस भार को वहन करना ही है
दे रही हमको स्वर्गिक संदेश
पनघट की पनिहारिन।

[१८]

यह मोदी की दूकान !
यहाँ बिकता है आँटा-दाल ।
नून, तेल, लकड़ी
इन्हीं में पीड़ित दुनिया है जकड़ी ,
बेंच रहा बैठा हुआ मोदी मोटा-तगड़ा,
अपने वैभव में गर्वोन्नत और अकड़ा ।

पर वह कितना शांत, करता नहीं झगड़ा,
संपति बटोरने का यही एक मार्ग—
सुन लो तुम सबकी बिना विरोध किए,
किंतु करो अपनी—
पूजा करो धन की इसी में कल्याण!
मोदी की प्रति श्वास गा रही है लक्ष्मी का गान।
इसी से चलती है, फलती है, फूलती है
मोदी की दूकान।

[१६]

तुम कहो स्वार्थ, मैं कहूँगा परमार्थ !
परम मैं—परम अहम !
तुच्छ यहाँ सब कुछ—तुम कर लो शास्त्रार्थ
यदि
मैं नहीं तो नहीं विश्व,
मुझसे है विश्व और मुझसे भगवान

अहम—अहम—सोऽहम—अस्मि—अहम ब्रह्मास्मि !

तत्त्वान्वेषण करो—यही एक तत्त्व,

यत्र-तत्र-सर्वत्र केवल एक स्वार्थ ;

स्वार्थ एक सत्य—

और सब कुछ अनर्थ

इसलिये कहता हूँ

स्वार्थ ही जगत में है एक परमार्थ !

[२०]

आत्मा से युद्ध कर रहा है शैतान···
लड़ते हैं जिस प्रकार चीन-जापान !
आत्मा मानवता है,
सुख है, शांति है,
चीन भगवान है, इन सबका रक्षक है
और जापान है पूरा शैतान !

रूपक यह दीपक बन तुमको दे ज्ञान !
संकट में पड़ा हुआ आज भगवान !
मानव हे !—साथ दो उसका,
नहीं तो यह जापान शैतान
देगा पछाड़ भगवान को, तुम पर
कर लेगा आधिपत्य !

[२१]

बोस और पटेल !

एक ही पथ के पथिक दो,

देश के हैं वे हितैषी,

किंतु फिर भी

क्यों रहे हैं

एक दूसरे को

यों धकेल ?
मार्ग भूल गए दोनों
देश जा रहा है किस घोरतम रसातल को !
उनसे कहो कि वे
लड़ें नहीं, झगड़ें नहीं
बीच में डालकर बापू को
कर लें वे मेल !

[२२]

रेलें लड़ती हैं, गिर पड़ते हैं वायुयान !
कितनी ही मोटरें बसें हो जाती हैं
चूर-चूर !
और मानवों के प्राण

हो जाते हैं
नश्वर शरीर से दूर !
वैज्ञानिक-विकास—
घातक हैं !
तुच्छ-बुद्धि मानव तू
काम ले उनसे
तुझको मिले हैं जो दो पैर !

[२३]

गाँवों में घुस गई आँटा की चक्की !

उसी तरह जैसे ग्रांड-ट्रंक-रोड पक्की !

नष्ट हो गया स्वास्थ्य,

अपच, कुपच, विसूचिका

कितने संक्रामक रोग

ग्राम-ग्राम, पुरवा-पुरवा, घर-घर, झोपड़े-झोपड़े

क्या न गए !
विलायती मशीनें
बर्मा से आनेवाला मिट्टी का तेल
इनका व्यवहार बढ़ गया ।
लोग हो गए हैं काम-चोर, आलसी
अब नहीं दिखाई देती हाथवाली चक्की,
औ'र नहीं सुन पड़ता
भोर उठनेवाला वह चक्की का संगीत !

[२४]

क्यों लड़ते जानते हो हिंदू-मुसलमान ?
इसलिये कि हिंदू है हिंदू ! मुसलमान हैं मुसलमान--
और दोनो मूर्ख हैं !
मुख्य प्रश्न रोटी का--
उसको वे भूल गए,
उठा लिया है आज
इन्होंने प्रश्न एक दाढ़ी और चोटी का !
बिना दाढ़ी-चोटी ये ज़िंदा रह सकते हैं,

किंतु बिना रोटी है मृत्यु अनिवार्य !
एक और कारण है !
भारत की जन-संख्या वृद्धि कर रही है उसे
कम करने का काम
हिंदू-सभा ने
मुसलिम लीग ने
उठा लिया है।
ठीक—इसीलिए यहाँ
लड़ा करते हैं यों हिंदू-मुसलमान !

[२५]

शांत, निस्तब्ध रजनी !
शांत, निस्तब्ध विश्व देख रहा सपने ।
फैला हुआ है एक निद्रा का इंद्र-जाल,
पल-भर को थका विश्व करता विश्राम !
सुबह फिर लड़ना है
धन से, ग़रीबी से,
भूख से, प्यास से,

सुख-दुख भेर लेंगे इन अभागे मानवों को
इसीलिये रात बन आई वरदान !
विस्मृति के दो पल
यदि न मिलते मानव को
तो वह निश्चय ही
हो जाता
पा
ग
ल
!

---

[१]

प्रथम रश्मि ने सुप्त चेतना को प्रदान की जागृति !

हुआ संचार स्तर-स्तर में नव-जीवन का—कलरव का विबुध-संगीत प्राणों में उमड़ा पड़ता है !

मानस के अंधकार में उज्ज्वल प्रकाश ने प्रवेश किया; उसी प्रकार जैसे विश्वास भ्रांति की काली चादर को उलट देता है ! आलोक की माला पहने स्वर्ग से उतरी है स्वर्णिम उषा !

[तिरासी

स्वप्नित चेतना किस अज्ञात संदेश का विस्मृति के गहन अंक से आवाहन करती है ? मेरे देव ! उच्छ्वसित उल्लास के विकास का क्रम निर्बाध हो, अनुभूति की व्यापकता में प्राण आलोड़ित हो उठें, केवल यही वरदान दो !

कर्म में संलग्न होनेवाले निर्बल प्राणी को श्रीचरणों का अवलंब हो। अनुभूति की संज्ञा में निहित अस्तित्व की प्रज्ञा एक बार ही सत्-चित्-आनंद मे पूरित हो जाय !

जगत् का कोलाहल धीरे-धीरे उमड़ रहा है, जीवन में एक गति– और उस गति में एक हलचल !

मेरे आगे है विश्वास की विस्मृति !

[२]

टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी, और मैं एकाकी! गति अनियंत्रित, चरण शिथिल, प्राण चकित; भावना सस्मित, ज्ञान विस्मित— और मैं मौन, जीवन के अखंड विश्वास से प्रेरित अग्रसर हो रहा हूँ, आगे—आगे! कहाँ?—नहीं जानता! देव—जानूँ भी तो कैसे? तुम्हारा प्रकाश इतना उज्ज्वल है कि नेत्र झप जाते हैं!

अथ-इति-रहित पथ! अनादि और अनंत का ज्वलंत प्रमाण अपने अंक में लिए हुए यह कभी समाप्त न होनेवाला मार्ग, कितना सँकरा और काँटों से भरा हुआ है! पर मार्ग की सँकराई में मुझे आत्मा का विस्तार मिला, काँटों को मैंने फूल समझ रक्खा है! प्राणेश—मेरा साहस देखोगे?

मैं हँस देता हूँ इस मार्ग पर, जिस प्रकार यह मार्ग हँसता है मुझ पर, मेरी निर्बलता पर ! मार्ग पराजित होगा। उसे अपने ऊपर अभिमान है, और मुझे विजय मिलेगी, क्योंकि मुझे तुम पर अभिमान है मेरे स्वामी !

मैं एकाकी—मेरे एकाकीपन में तुम निहित हो मेरे देव, मैंने तुम्हें अपने से पृथक् कब माना ? और मुझे नित्य ही मिलनेवाले तथा अलग हो जानेवाले कितने ही मेरे अपने और पराए ? इन पर कुछ न कहना ही तुम्हारी सच्ची आराधना है !

[३]

कलिका में रस है, और भ्रमर में प्यास है!

रस-दान करके मुरझा जाना कलिका का गुण है—अपनी अतृप्त प्यास को बुझाने के लिये एक कली से दूसरी कली पर उड़ जाना, भ्रमर का गुण है!

फिर विश्व कलिका के प्रति सहानुभूति क्यों प्रदर्शित करता है, और भ्रमर के प्रति उसका क्रोध क्यों है? इस रहस्य को क्या मुझे समझा सकोगे मेरे स्वामी?

क्या आत्मसमर्पण ही सबसे बड़ी साधना है? अस्तित्व की सार्थकता मिटने में है, दूसरों को सुख पहुँचाते हुए—माना! पर एक प्रश्न और है! तुम्हीं ने तो यह सब विधान रचा है; उत्पीड़क और उत्पीड़ित तुम्हारी ही तो सृष्टि है! यह क्यों?

भ्रमर और कली, ये निमित्त-मात्र हैं! जीवन विषमताओं का समूह है--और उन विषमताओं को उत्पन्न करने का श्रेय तुम्हें ही है मेरे देवता! फिर पाप-पुण्य, भला-बुरा यह सब क्यों? मानव को निर्बल बनाकर--उसे भावनाओं और कमजोरियों का पुतला गढ़कर तुम उससे चाहते क्या हो?

क्या कहा? मानव निर्बल नहीं है—समर्थ है। वह भावनाओं और कमजोरियों का पुतला नहीं है, वह कर्ता है—क्या कहते हो देव? मुझे विश्वास नहीं होता! हाँ, मुझे बुद्धि मिली है—उससे क्या? क्या बुद्धि ही सत्य है, और नित्य है? क्या बुद्धि हमें पूर्णता तक पहुँचा सकती है? हाँ, बुद्धि द्वारा हमने प्रकृति पर विजय अवश्य पाई है—तो क्या हम आत्मा पर भी विजय पा सकते हैं?

[४]

"अजगर करें न चाकरी, पंछी करें न काम ;
दास मलूका कह गए सबके दाता राम ।"

मलूकदास ने यह दोहा कहा, क्योंकि वह कह सकते थे उस युग में पैदा होने के कारण, जिसमें जीवन के भयानक संघर्षण के रूप में तुम प्रकट नहीं हुए थे हे जीवन के स्वामी !

तुम्हारा आज का रूप कितना भयानक है—कितना विराट् है !

जिस निर्दयता के साथ तुम सृजन कर रहे हो, उससे भी अधिक प्रखर निर्दयता के साथ तुम संहार कर रहे हो !

मनुष्य पशु की तरह काम करता है, और भूखों मरता है !

मनुष्य दानव की तरह उत्पीड़न करता है, और वह मौज करता है !

इस मौज करने में और भूखों मरने में कुछ विधान तो होगा ही ? अविश्वास के पथ पर अग्रसर मानव को सांत्वना दो !

आरंभ होना अंत होने का द्योतक है; जन्म के साथ मृत्यु लगी है। बननेवाला बिगड़ेगा भी—इस विधान के ऊपरवाला एक अनियमित-सा दीखता हुआ संसृति का क्रम !

यही है तुच्छ-बुद्धि मानव का भ्रम !

हे महापुरुष ! अपने रहस्य उद्घाटन करके अपने पर अविश्वास करनेवाली जगत् की निर्बलता की आत्मा में अपना आलोक भर दो !

बीज में वृक्ष है, वृक्ष में फूल है, फूल में फल है, और फल में बीज है !

इन सबों के भीतर एक जीवन है, अजन्मा और अनश्वर !

यदि हम केवल यही जान सकते कि मृत्यु परिवर्तन है उसी प्रकार, जिस प्रकार जन्म परिवर्तन है, और जन्म-मरण के ऊपर उठ सकते !

पर हे देव ! तुम्हीं तो हमें यह जानने से, यह समझने से रोकते हो। अपने इंद्रजाल को फैलाकर, सुख-दुख, दिन-रात के ताने-बाने से बिने हुए आवरण को हमारे नेत्रों के आगे डालकर !

दिन चढ़ रहा है, जीवन का विकास हो रहा है! पर अपने सुख-दुख में डूबा हुआ 'अहम' इस विकास की लीला को देख सकने में असमर्थ है।

तुम्हारे रहस्योद्घाटन का क्रम भी तो विचित्र है हे विश्वात्मा!

अस्तित्व की सार्थकता की अनुभूति किसे मिल सकी है? मैं पूछ रहा हूँ; और मुझे कहीं से कोई उत्तर नहीं मिलता। पर अस्तित्व की सार्थकता है अवश्य, तभी तो मानव उससे बुरी तरह चिपटा हुआ है।

मानव अर्थ के पीछे है, अनर्थ उसके पीछे है!

तुम अर्थ हो अथवा अनर्थ?

[६]

कौतूहल के क्षीर-सागर में निवास करनेवाले प्राणी ने अपने अहम् का गरल क्षीर-सागर में घोल दिया !

सुख के पीछे दीवाने सारा सुख स्वयं ले लेना चाहते हैं— उन्हें यह गवारा नहीं कि दूसरा भी उस सुख में कुछ हिस्सा बँटा ले !

करुणा रोती है, दया दुखी है ! दुःख और रुदन की, दुनिया को चाह नहीं।

जीवन का एकाकीपन अनेकता की सीमा में विभाजित होकर शून्य की ओर अग्रसर हो रहा है !

असमर्थता और विवशता की प्राचीरें सोऽहम् पर अविश्वास और 'अहम्' पर विश्वास पर खड़ी हैं।

बस, यहीं सृष्टि की असफलता है हे सृष्टिकर्ता, और तुम्हारी सफलता का कौशल है। प्रमाद के अवसाद और आह्लाद से घिरी हुई संसृति तुम्हारे लिये खेल बन गई है—पर......!

नहीं कहूँगा—कहने से लाभ ?

कहनेवाला मैं हूँ—सुननेवाला कौन है ?

सुननेवाला भी तो मैं ही हूँ !

[७]

सूर्य सिर के ऊपर है—सूर्य के ऊपर कौन है ?

मैं देख नहीं सकता, अंधे हो जाने का भय है ? ऊपर की वस्तु को देख सकने की क्षमता ही मुझे नहीं मिली—मैं अपूर्ण हूँ।

अपनी अपूर्णता के ताप को मैंने सूर्य का ताप समझ रक्खा है—पर सूर्य का यह उज्ज्वल प्रकाश ?

यह उज्ज्वल प्रकाश मेरी आत्मा में सदा निवास करनेवाले हे संपूर्ण ! तुम्हारा प्रकाश है !

प्रकाश के साथ ताप है—चाहे वह सूर्य में हो, चाहे वह दीपक में हो, चाहे वह अग्नि में हो।

इसलिये तुममें प्रकाश होने के कारण असह्य ताप भी है प्राणेश्वर, तुम्हारे ताप से ही मैं तड़प रहा हूँ।

हे नियमों के बनानेवाले, क्या तुम एक क्षण के लिये अपने बनाए हुए नियम बदल नहीं सकते ?

अपने बनाए हुए बंधनों में बँधकर तुमने अपनी सृष्टि में भयानक विप्लव उत्पन्न कर दिया है।

तुम समर्थ हो—अपनी सामर्थ्य से तुम्हीं हम असमर्थों की अचिरता को चिर-जीवन प्रदान कर सकते हो !

सूर्य सिर के ऊपर है—सूर्य के ऊपर तुम हो !

[८]

जल की एक बूँद उठी, उसने सरिता से कहा—"मुझसे ही तुम्हारा अस्तित्व है!"

सरिता हँस पड़ी—जल की बूँद की धृष्टता पर! उसने अभिमान के साथ कहा—"तुम जा सकती हो—तुम्हारे जाने से मेरा कुछ बिगड़ेगा नहीं!"

जल की नन्ही बूँद चली गई।

जल की दूसरी बूँद उठी, उसने सरिता से वही कहा, जो पहली बूँद ने कहा था।

सरिता उसी प्रकार हँसी, जिस प्रकार वह पहली बूँद से हँसी थी, और उसी अभिमान के साथ उसने वही उत्तर दिया।

जल की दूसरी बूँद भी चली गई।

एक के बाद एक बूँदें उठ-उठकर सरिता से अलग होती गई।

सरिता सूख गई।

हे मेरे स्वामी! तुम भी सरिता हो, और हम सब नन्ही-नन्ही बूँदें हैं।

तुम्हारा अस्तित्व तभी तक है, जब तक हमारा है, इसे भूल मत जाना!

अपने अधिकार की गुरुता में भूले हुए हे मेरे परमात्मा! अपने अधिकारों को सोचो-समझो!

नहीं तो?

हमें भी अपने ऊपर गर्व है! तुम सरिता हो, और हम नन्ही बूँदें हैं!

[१]

आम की बौर पर बौराई हुई कोयल ने पंचम में गाया—
कुहू ! कुहू ! और, सारा मधुवन उन्माद से झूम उठा !
मौलश्री, शेफाली अपने वैभव को लेकर फूल उठीं।
पल्लवों की हरीतिमा उल्लास बिखेर रही है।
आज बसंत संसार को मधु-पात्र पिला रहा है।

[निन्नानबे

पर, संसार पीड़ित है, दुखी है। वह न मधुवन को ही देख सकता है, और न मधु-ऋतु को ही। संसार के संगीत में कोयल का दर्द है, पर बसंत का उन्माद नहीं; वैभव की कसक तो है, पर मौलश्री और शेफाली का उल्लास नहीं।

कितने बसंत आते हैं, चले जाते हैं। पर संसार बसंत को न देखकर आनेवाले ग्रीष्म की चिता में झुलस रहा है।

कोयल भूली हुई है हर्ष में; विश्व भूला हुआ है विषाद में, और मेरे स्वामी, तुम भूले हुए हो अपनी लीला में!

[१०]

कोयल काली है—कौवा काला है।

कोयल बोलती है—कौवा बोलता है।

दोनो ही पक्षी हैं।

फिर भी हम कोयल को प्यार करते और कौवे से घृणा करते हैं! यह विषमता क्यों? दोनो ही तो एक सृष्टिकर्ता की करतूतें हैं!

सुंदर और कुरूप का यह भेद-भाव क्यों ?

एक हमें सुखी बनाता है और दूसरा दुखी, यही कारण है न ? पर सुखी और दुखी होनेवाले हम हैं न ?

अपना सुख और अपना दुख ! यही हमारे जीवन में इतनी भयानक विषमता उत्पन्न कर रहा है !

मेरे स्वामी ! तुम सुख-दुख के ऊपर हो, तभी तो तुमने सुंदर और कुरूप, सभी कुछ बनाया !

स्वयं सुख-दुख के परे रहकर तुमने हमें सुख-दुख के चक्कर में डाल रक्खा है !

हम भी सुख-दुख के ऊपर उठ सकते हैं !

[११]

उन ऊँचे-ऊँचे प्रासादों को हमने बनाया है—हमने !
तुम्हारी रचना कितनी अधूरी है, कितनी कुरूप है !
ऊँची-नीची, कठोर-नुकीली चट्टानों को तुमने बनाया।
उन चट्टानों को काट-काटकर हमने समतल, सुंदर, कलात्मक भवनों का निर्माण किया है—जो स्वर्ग से टक्कर ले सकते हैं।

तुमने कँटीली झाड़ियों से, विषधर सर्पों से, हिंसक जानवरों से भरे हुए जंगल बनाए।

उन जंगलों को साफ करके, साँपों और सिंहों को मारकर हमने नंदन-कानन बना दिया, जहाँ सुंदरियाँ अठखेलियाँ करती हैं। कोयलें गाती हैं, और मनसिज पंचबाण सहित किलोलें करता है।

तुम हारे और हम जीते, तुम्हारी कमी को हमने पूरा किया!

लेकिन?

क्या कहा? तुमने हमें बनाया! हाँ, तुमने हमें बनाया मेरे स्वामी! तुम जीते और हम हारे!

[१२]

दिन और रात मिल रहे हैं।

दूर क्षितिज पर थका हुआ सूर्य अपने विश्राम-गृह की ओर अग्रसर हो रहा है। कालिमा धीरे-धीरे संसार को अपने में लपेट रही है।

और मैं पूछ रहा हूँ---यह कालिमा कहाँ से आई ?

तुम प्रकाशमान हो, मेरे देव ! दिन के प्रकाश पर रात्रि के अंधकार की विजय क्या तुम्हारी पराजय नहीं है ?

हाँ, देख रहा हूँ आकाश पर फैले हुए अनगिनती तारे ! ये सब तुम्हारे ही प्रतिबिंब हैं। तुम विजयी हो, चिर-विजयी हो !

[१३]

मैं थका हुआ हूँ और हारा हुआ।

एक भयानक सूनापन मेरे प्राणों में समा गया है। जीवन के असह भार को ढोते-ढोते मैं रो पड़ा हूँ!

तुमने ही तो मेरे निर्बल कंधों पर यह दुःसह भार लाद दिया है। अब तुम्हीं मुझे बल भी दोगे—इसका मुझे विश्वास है।

दूर—अति दूर मैं निराशा की धुँधली छाया देख रहा हूँ—मेरी ओर मुँह बाकर बढ़ती हुई। मेरे हाथ-पैरों में बल नहीं कि मैं भागूँ—मुझे मार्ग भी तो नहीं दिखलाई देता—रोते-रोते मेरी आँखें धुँधली हो चुकी हैं।

तुम्हारे ऊपर चिर-संचित उस विश्वास की, जिसे मैं अपने अंतर में अमूल्य निधि की भाँति छिपाए हूँ, लाज रखना मेरे नाथ !

[१४]

मेरी पराजय तुम्हारी पराजय है; क्योंकि मेरी पराजय मेरे विश्वास की पराजय होगी, और मेरे विश्वास तुम हो।

अथाह सागर है, और मेरी नौका बीचोबीच आकर पड़ गई है। चारों ओर भयानक अंधकार है, और मैं भयभीत हूँ।

मेरे नाविक ! मुझे यहाँ तक लाकर अकेले छोड़ देना तुम्हें शोभा नहीं देता। जिस काम को अपने ऊपर लिया है, उसे पूरा भी करना होगा।

और, एकाएक मुझे प्रकाश दीख पड़ा—तुम मेरी बग़ल में खड़े हँस रहे हो, दयामय !

तुम्हारी लीला अपरंपार है।

[१५]

जिज्ञासा और अंतर्द्वंद्व के अंधकार को जाननेवाला तुम्हारे प्रकाश की महत्ता को क्या समझ सकेगा ?

आज मुझमें असीम उल्लास है; क्योंकि मैंने सत्य को पा लिया ।

असत्य को मैंने अंधकार इसीलिये समझा कि मुझे सत्य के दर्शन हो गए। मेरे पूज्य! अपने दर्शन देकर तुम भूले हुए विश्व के सर्वव्यापी और घातक असत्य को दूर करो।

इस सत्य में करुणा है, कसक है। पर इस करुणा में कितनी कोमलता है, और इस कसक में कितनी मिठास है।

हे चिरंतन, तुमने मुझे जो पीड़ा में अपना रूप दिखाया है—विश्व उससे वंचित क्यों है?

[१६]

विद्युत् की लहरों में गति है, गति में ही ताप है, शीत है, प्रकाश है !

अंबर पर उमड़नेवाले नील जलधर अपने हृदय में उसी विद्युत् को छिपाए हुए हैं। उस विद्युत् में कितनी घोर गर्जना है, सारा विश्व उस गर्जना से कंपायमान है !

उद्यानों में नव-जीवन फैला है; धूमिल बादलों ने निर्मल जल प्रदान किया है, निर्मल जीवन है, जीवन हरियाली है, हरियाली पुष्प है, पुष्प में विविध प्रकार के रंग हैं—लाल, नीले, पीले, गुलाबी, धानी, कासनी, कपूरी, पियाजी, नारंगी......

मयूर अपनी प्रेमिका से प्रणय-भिक्षा माँग रहा है, अपने रंगों को प्रदर्शित करके यौवन के उन्माद में भूला हुआ वह नृत्य कर रहा है। प्रकृति के अनुपम शृंगार का मयूर एक सुंदरतम भाग बनकर है, फिर भी उसे अभिमान नहीं। वह साँप खाता है, उसकी सुंदरता एक रेंगती हुई कुरूपता प्रदर्शित कर रही है।

पुरवाई, जो अभी तक नई नवोढ़ा की भाँति कुछ ठिठकी-सी कुछ सकुची-सी चल रही थी, एकाएक प्रौढ़ा की भाँति वेग-मयी क्यों हो गई है? अपने वेग में वह मत्त झूमते हुए बादलों के झुंडों को उड़ाए लिए जाती है; उसके मार्ग में पड़नेवाले बड़े-बड़े विशालकाय वृक्ष उसे मार्ग देने को झुक जाते हैं! वही पुरवाई, जो संयोगिनी के शरीर को स्पर्श कर उसे एक पुलकन प्रदान करती है, वियोगिनी के शरीर को जला देती है!

[१७]

जल से भरे हैं सरोवर, नद और सागर ! जल ही जीवन है—आकाश विश्व को जल-दान कर रहा है। फिर भी विश्व प्यासा है—वह जीवन माँग रहा है !

बिना जल के वृक्ष सूख जाते हैं, मनुष्य मर जाता है—सृष्टि का विनाश हो जाता है। संसार में भूमि की अपेक्षा जल का भाग बहुत अधिक है !

भूमि के नीचे---बहुत नीचे चट्टानों को काटकर यदि देखा जाय, तो वहाँ भी जल ही है। फिर भी विश्व प्यासा है! कैसी भयानक विडंबना है!

आकाश पर उमड़नेवाली घटाओ, तुम्हारा स्वागत है। तुम अपना कर्तव्य पालन कर रही हो–तुम धन्य हो! पर क्या तुम इन हतभागे प्यासों की प्यास बुझा सकोगी?

विश्व प्यासा है—और उसकी प्यास बुझ सकती है नेत्रों में निवास करनेवाले जल की केवल दो बूँदों से!

[१८]

पपीहा कह उठा—"पी कहाँ ?"

विश्व अपनी मौन भाषा में पूछ रहा है—"पी कहाँ ?"

मेरे स्वामी, तुम्हारी क्रीड़ा तुम्हारे प्रेमियों के लिये वरदान न बनकर अभिशाप बन गई।

इस घोर अमावस में आनेवाले पावस के निबिड़ अंधकार में तुमने असंख्य जुगनू भेज दिए है—मैं देखता हूँ; पर तुम कहाँ छिपे हो ?

पपीहा पीड़ित है, विश्व पीड़ित है ! तुमने एक पीड़ा का साम्राज्य स्थापित कर दिया है, जहाँ तुम्हारा एकच्छत्र शासन है। पर यह क्यों ? इसमें तुम्हें कौन-सा सुख मिलता है मेरे स्वामी ? क्या दूसरों के क्रंदन को ही तुम अपना परम विधान समझे हो ?

मुझे भय है कि कहीं तुम्हारे प्राणों में भी "पी कहाँ" की रट न समा जाय !

[१९]

वह विशालकाय नीम का वृक्ष अपने सिर पर युगों का भार लिए मौन खड़ा है !

मैंने उससे पूछा—"हे गुरुजन ! तुमनेहास-विलास देखे, तुमने लोगों का क्रंदन देखा ! एक दार्शनिक की भाँति तुम मौन सब देखते-सुनते रहे ! क्या तुम जीवन के रहस्य को समझ सके ?"

पर मैं उस नीम के वृक्ष के मौन को न तोड़ सका । वह वैसा-का-वैसा गंभीर अपने में लय, चुपचाप हृदय-हीनता की मूर्ति बना खड़ा रहा ।

इतने में दूर देश से आनेवाले थके हुए यात्रियों का एक दल आया। धूप से वे पीड़ित थे—उन्हें प्यास लगी थी।

और, उन यात्रियों ने नीम की उस शीतल छाया में बिस्तर लगाया। इसके बाद उन्होंने संतोष और शांति की गहरी साँस ली।

और, मैंने देखा कि नीम की पत्तियों ने उन थके-माँदों पर विजना डुलाना आरंभ कर दिया। मैं चौंक उठा।

मैंने अपना मस्तक झुका दिया; मैं कह उठा—"तुम दार्शनिक नहीं हो—तुम परम तपस्वी हो। अपनी साधना में रत! तुम्हें अवकाश कहाँ कि तुम कहो-सुनो!"

हे विशालकाय नीम के वृक्ष! तुम्हारा जीवन सार्थक है।

[२०]

पीली-पीली सरसों अपने वैभव में मदमाती, इठलाती, बल खाती लहरा रही है !

पास ही गेहूँ और चने की बालें पृथ्वी की महत्ता को बतला रही हैं—अन्नदा वसुंधरा !

अथक परिश्रम करके मानव ने प्रकृति से यह उपहार पाया है; मानव पुरुष है—उसने प्रकृति को उत्पादक शक्ति प्रदान की है !

ग्रीष्म-काल आनेवाला है—सरसों का पीलापन कह रहा है। ग्रीष्मकाल के मध्याह्न में तप कर ही तो प्रकृति उर्वरा होती है!

हे स्रष्टा! तुम कहाँ-कहाँ अपना जीवन-संचार कर रहे हो? किन-किन खंडों से तुम अपने अखंड वैभव को प्रदर्शित कर रहे हो? सारा विश्व चकित-सा तुम्हारी निःसीमता को निहार रहा है, फिर भी उसे समझ नहीं पाता।

[२१]

गगन-चुंबन करनेवाली उत्तुंग शृंग-माला के शीश पर आसीन धवल, शीतल हिम संध्या की विवर्णता से और भी सवर्ण हो उठा।

पाषाणों के अंतर में एक मौन संगीत प्रवाहित हो रहा है, जो अपनी मादकता में सारे वातावरण को विमुध-विमुग्ध बना रहा है। सामनेवाली ऊँची चोटी कितनी ऊबड़-खाबड़ है। पर उसी ऊबड़-खाबड़ में तो प्रकृति का अगाध सौंदर्य है।

धारा पर सुंदरियाँ जल भर रही हैं और गाना गा रही हैं। उनके संगीत में कैसी मादकता है, कैसी तन्मयता है। कल्पना ......अनादि, अनंत, असीम !

ढलते हुए दिन में नवबाला का उभरता हुआ यौवन ह्रास और विकास के क्रम को संसार के सामने रख रहा है। नश्वरता ही यहाँ प्रत्येक वस्तु के साथ मिलेगी।

मुझे भय लग रहा है कि कहीं यह शृंग-माला टूट न पड़े--क्योंकि यह बनी भी तो थी !

पनघट पर भीड़ लगी है। नई-नवेली पनिहारिनें हँसती और खेलती हैं, भूत और भविष्य को भूली हुई, एक सत्य और नित्य वर्तमान में लय होकर।

"हे पनिहारिन! मैं प्यासा हूँ। दूर-देश से चलकर आ रहा हूँ, क्या तुम मेरी प्यास बुझा सकोगी?" आनेवाले एक सुंदर युवक ने पूछा।

"मेरे घर में भी एक प्यासा देवता बैठा है, मुझ पर अवलंबित। तुम अपने घर में शीतल जल छोड़कर रास्ते-रास्ते भटक रहे हो, पर मेरा देवता मुझ पर अवलंबित मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। उसकी प्यास बुझाना मेरा धर्म है।" मुस्किराते हुए पनिहारिन ने उत्तर दिया।

अपने सुंदर मस्तक को तनिक और ऊँचा करके अतिथि हँस पड़ा। उसके हास्य में संगीत था, माधुर्य था। उसने कहा—"जिस प्रकार जल का गुण है रिक्त को पूर्ण करना, उसी प्रकार प्यास का गुण है भरे की ओर दौड़ना। सीमा में जल को बाँधनेवाली तुम हे सुंदरी, और सीमा में प्यास को बाँधनेवाला तुम्हारा सुंदर देवता, ये दोनों ही मृत्यु का सौंदर्य लिए हैं। जीवन का सौंदर्य असीमता की ओर अग्रसर होने में है!"

पनिहारिन इस उत्तर से चौंक उठी। बहुत दिनों से वह अपने हृदय में एक पीड़ा का अनुभव करती थी; अपने देवता से उसे अरुचि-सी हो रही थी। आज उसने अनायास ही उस सबका उत्तर पा लिया।

उसने पात्र बढ़ाया—"लो युवक! अपनी प्यास बुझाओ।"

लेकिन युवक गंभीर था। उसने कहा—"नहीं पनिहारिन! अतिथि से 'ना' कहना सबसे बड़ा अपराध है—वह एक ऐसा अपराध है, जो अक्षम्य है। अनादि काल से मैं प्यासा चल रहा हूँ—केवल सहृदयता का जल पाने के लिये! तुम भी परीक्षा में असफल रहीं! नमस्कार!"

और युवक चल पड़ा! पनिहारिन तब तक उस युवक की ओर देखती रही, जब तक उसकी आँखों के अश्रुओं ने उसकी दृष्टि को धुँधला नहीं कर दिया।

[२३]

मंदिर के द्वार को रोककर पुजारी ने कहा—"तुम कौन वर्ण हो !"

चिथड़ों से ढके हुए, जिसके शरीर से भयानक दुर्गंध निकल रही थी, प्राणी ने कातर स्वर में कहा—"मैं भक्त हूँ—मैं केवल इतना जानता हूँ !"

"इस मंदिर में केवल द्विज ही प्रवेश पा सकते हैं !" पुजारी ने शांत भाव से कहा।

"चाहे वे द्विज नास्तिक हों और देवता का अपमान करते हों ?"

पुजारी चक्कर में पड़ गया। कुछ सोचकर उसने कहा—"द्विज नास्तिक हो ही नहीं सकता !"

"नास्तिकता की कसौटी क्या है ?" उस प्राणी ने फिर पूछा !

"देवता पर अविश्वास—या उससे घृणा !"

"और देवता द्वारा बनाए हुए प्राणी से घृणा ?"

पुजारी ने क्रोध में आकर कहा—"जाओ, यहाँ से एकदम जाओ ! मेरे पास समय नहीं कि मैं तुमसे तर्क करूँ । तुच्छ और घृणित प्राणी !"

और उसी समय एक भयानक आवाज़ हुई ; पुजारी चौंक उठा । उसने देखा, उसके सामनेवाला प्राणी अपने कपड़े उतार रहा है—और उन कपड़ों के नीचे उसने अपने देवता की मूर्ति देखी !

पुजारी देवता के चरणों पर गिर पड़ा—"क्षमा करना देव ! मुझसे भूल में अपराध हो गया !"

पुजारी को पैर से ठुकराकर देवता ने मंदिर में प्रवेश किया, और पट भीतर से बंद हो गए । पुजारी पागल-सा चिल्लाता रहा, पर पट न खुले ।

प्रातः लोगों ने सुना कि पुजारी पागल हो गया !

[२४]

कलाकार ने किसान से पूछा—"तुम जानते हो कि सौंदर्य क्या है ?"

किसान ने हल अपने कंधे पर रखते हुए उत्तर दिया—"हाँ, सौंदर्य है भर पेट भोजन करना !"

कलाकार ने मजदूर से पूछा—"तुम जानते हो सौंदर्य क्या है ?"

मजदूर ने अपने सिर पर ईंटों को रखते हुए उत्तर दिया—"हाँ, सौंदर्य है भर पेट भोजन करना !"

कलाकार ने बनिए से पूछा—"तुम जानते हो, सौंदर्य क्या है ?"

बनिए ने सौदा तौलते हुए कहा—"हाँ, सौंदर्य है भर पेट भोजन करना !"

कलाकार ने दफ्तर के मुंशी से पूछा—"तुम जानते हो, सौंदर्य क्या है ?"

दफ्तर के मुंशी ने दस्तावेज़ पर नज़र डालते हुए कहा—"हाँ, सौंदर्य है भर पेट भोजन करना !"

कलाकार ने अफ़सर से पूछा—"तुम जानते हो, सौंदर्य क्या है ?"

अफ़सर ने राज-काज के हुक्म देते हुए कहा—"हाँ, सौंदर्य है भर पेट भोजन करना !"

कलाकार सब जगह घूमा-फिरा। सब जगह उसने एक ही प्रश्न किया, और सब जगह उसे एक ही उत्तर मिला।

अंत में कलाकार ने अपने से पूछा—"तुम जानते हो, सौंदर्य क्या है !"

और कलाकार ने प्रकाशक के नाम रुपयों के तक़ाज़े का पत्र लिखते हुए कहा—'हाँ, सौंदर्य है भर पेट भोजन करना !"

[२५]

एक दिन समाप्त हुआ, दूसरे दिन की प्रतीक्षा है !

आज के अनुभवों को लेकर हमें कल फिर जीवन के मार्ग में अग्रसर होना है ।

हे भगवन् ! हमें बुद्धि दो कि हम अपने अनुभवों से सबक़ लें, अपनी ग़लतियों को न दुहरावें, दुनिया की भलाई में अपनी भलाई देखें ।

हे भगवन् ! हमें बल दो कि हम साहस-पूर्वक सत्य को अपनावें । अनीति और अत्याचार का मुक़ाबिला करें, और उसे इस विश्व से दूर करें ।

अभिमान के असह्य भार को तुम हमारे कंधे से उतार लो, हे समर्थ !

'अहम्' की भावना को तुम वापस ले लो—यह बहुत बड़ा अभिशाप है।

तुम महान् हो—हमें अपनी महत्ता प्रदान करो।

तुम करुणामय हो—अपनी करुणा के स्रोत में हमें प्रवाहित कर दो।

हमारी कायरता बाधा बनकर हमसे लड़ रही है, इस कायरता पर विजय पाने की हमें क्षमता प्रदान करो, हे स्वामी!

मार्ग के अंधकार को तुम अपने प्रकाश से दूर करो। हे विराट! हम तुम्हारे ही एक भाग हैं, कृपा करो।